Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 10 | ISSUE : 2 | FEBRUARY 2024

संत दादू दयाल के धार्मिक विचारों की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता

डॉ. रोहिताश कुमार [1]

[1] **प्राचार्य, श्री श्याम पी.जी. महाविद्यालय, गुढ़ा गौड़जी, झुंझुनूं.**

ABSTRACT:

धर्म का अर्थ है सत्य और अहिंसा, मृदुता और करूणा, प्रमाणिकता और मानवीय मूल्यों की स्वीकृति। धर्म पशुता का नहीं मानवता का पाठ पढ़ाता है, धर्म घृणा का नहीं प्रेम का पाठ पढ़ाता है। धर्म हिंसा का नहीं अहिंसा का पाठ पढ़ाता है। किन्तु जब धर्म साम्प्रदायिक कुचक्र और साम्प्रदायिक राजनीति के जाल में फंस जाता तो बदनाम होता है।

दादू द्वारा यह प्रेरणा मिलती है कि हमें परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरना है - साम्प्रदायिता से असाम्प्रदायिकता की ओर, सम्प्रदाय से सम्प्रदायातीत दृष्टि की ओर और साम्प्रदायिक सापेक्ष दृष्टि से साम्प्रदायिक निरपेक्ष दृष्टि की ओर।

KEYWORDS:

संत, धर्म एवं प्रासंगिकता।

PAPER ACCEPTED DATE:	PAPER PUBLISHED DATE:
25th February 2024	29th February 2024

भूमिका -

धर्म या सत्य जीवन का सर्वोत्कृष्ट मूल्य है। पहले यह साधन और अन्त में मूल्य साक्षात्कार के समय यह साध्य हो जाता है। धर्म के चार चरण - सत्य, तप, दया और दान इसके अंग है। सत् या शुभ का आचरण धर्म है। सामाजिक जीवन में धर्म के मुख्यतः तीन रूप प्रकट है - आत्मनिष्ठ, वस्तुनिष्ठ और सम्मिक्ष या आनुष्ठानिक । जीवन चेतना में गुण का विकसित मूल्य है। दूसरा उन्मेश चित की नैतिक भूमि में होता है। धर्म अपने अंग-उपांग के साथ बाल साहित्य में सविस्तार वर्णित है।

भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्टय को अत्यधिक महत्व दिया गया है। सभी मनुष्यों के लिए अपने जीवन में इन पुरुषार्थों की प्राप्ति करना आवश्यक माना गया है। ये पुरुषार्थ है - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

इन चार पुरुषार्थों में भी सर्वोपरि स्थान धर्म को प्रदान किया गया है। धर्म को जीवन का आधार माना गया है।

आत्मनिष्ठ धार्मिक विचार:-

सत्य -

एक स्थल पर कठोपनिषद के भाष्य में शंकराचार्य की उक्ति है- ''सत्यं यथा भूत वचनमपीडा करम्''।

अर्थात् दूसरे को पीड़ा न पहुँचाने वाला यथार्थ वचन सत्य है। वे पुनः कहते हैं, वाणी, मन और शरीर की अकुटिलता का नाम सत्य है। इसका अभिप्राय है कि मन से चिंतन, बुद्धि से निश्चित वस्तु विशेष के यथार्थ रूप का, वाणी या क्रिया द्वारा प्रकाशन सत्य है। यथार्थ घटित, वास्तविक तथ्य का कथन भी सत्य का एक रूप है। सत्यप्रिय व्यक्ति स्वभावतः, निर्लोभ, निःस्वार्थ और निर्भय होता है। स्व और समाज दोनों का हित सत्य के आचरण में निहित है। रामादि के जीवन में सत्य मूल्य के प्रति निष्ठा के निम्न दृष्टांत हैं-

वाणी, मन और शरीर की अकुटिलता का नाम ही धर्म है। धर्मप्रिय व्यक्ति स्वभावतः निर्लोभ, निःस्वार्थ और निर्भय होता है। स्वयं व समाज दोनों का हित धर्म के आचारण में निहित होता है। जो व्यक्ति धर्म से प्रेम करता है उसको किसी प्रकार का भय नहीं सताता।

ब्रह्म, वेद, परलोक और पुनर्जन्म में अतक्र्य विश्वास ही धर्म है। श्रद्धावान व्यक्ति, आयु, विद्या, यष, बल एवं धन की प्राप्ति व इनका समुचित प्रयोग करता है। अतः मनुष्य को उक्त में पूर्ण आस्था रखनी चाहिए। माता, पिता और गुरू की सेवा से बढ़कर तीनों लोकों में कोई वस्तु पवित्र नहीं है।

किसी कार्य को दृढ़ संकल्प के साथ पूर्ण करने का प्रयास करना ही व्रत है। संकल्प शक्ति मनुष्य के कठिनतम कार्य को भी आसान बना देती है।

वस्तुनिष्ठ धार्मिक विचार: -

त्याग -

संग्रह और त्याग सापेक्ष धर्म हैं। पूर्व संग्रहित वस्तु का त्याग सम्भव है, अतः प्रियाप्रिय वस्तु से सम्बन्ध विच्छेद या उसका उत्सर्ग (विसर्ग) त्याग है। कर्म फल के त्याग से निरन्तर शान्ति की प्राप्ति होती है। ईशावास्योपनिषद् में त्यागपूर्वक भोग का आदेश किया है। धर्म विरूद्ध भावों का भी मनसा परित्याग श्रेयस्कर है।

दान -

हित कामना से वस्तु का निःस्वार्थ विसर्जन दान है। गीता में इसके त्रिगुणात्मक रूप की विस्तृत व्याख्या है। बृहदारण्यकोपनिषद् में प्रजापति का 'द' मनुष्य के लिए दान का प्रतीक है। महाभारत के कर्ण ने इस मूल्य के साक्षात्कार के लिए शरीर के अभिन्न अवयव का विसर्जन किया।

कारुण्य -

परोपकार व सेवा भावना से द्रवित चित्त यदि उत्साह सम्पन्न होकर किसी का दुःख दूर करने में तत्पर नहीं हुआ तो वह क्षणिक उद्बुद्ध होकर शांत हो जाता है। दुर्बलमना व्यक्ति की करूणा पूरी तरह क्लीव हो जाती है। कारूण्य की प्रतिक्रिया आश्रय के संगत संस्कार और निहित बलपराक्रम के अनुरूप होती है। कारूण्य, धर्म का अतिशय स्पृहणीय मूल्य है। इससे मनुष्य दूसरे के हृदय में प्रवेश करता है और आगे, समस्त प्राणी समुदाय से तादात्म्य स्थापित करता है।

आनुष्ठानिक धार्मिक विचार: -

वेद के याज्ञिक कर्मकाण्ड से धार्मिक अनुष्ठान का विकास हुआ है। इसमें स्थानिक और लौकिक प्रभाव भी सम्मिलित होता रहता है। धर्म के अनेक सम्प्रदायों के विधि विधान में अन्तर देखे जाते हैं। तन्त्र साधना में अनुष्ठान का कुछ और रूप दृष्टिगत होता है। सत्वादि गुणों के आधार पर विधि में भी भिन्नता देखी जाती है। आनुष्ठानिक क्रिया व्यक्ति और जाति के

मानस को जादू की तरह प्रभावित करती है। मन पर इसका संमोहक प्रभाव पड़ता है, और वह आजीवन कायम रहता है।

धर्म का मर्म समझने के लिए मनुष्य की जीवनी शक्ति और संसार की नश्वरता के मध्य द्वन्द को पहचानना परम आवश्यक है। कोई भी धर्म मनुष्य के जीवन, उसके अनुभव, स्मृतितन्त्र और अस्तित्व मात्र से उसके सम्बन्ध का समग्र आख्यान है। ऐसा आख्यान जिसके हवाले से मनुष्य अपने अलग-अलग अनुभवों को अर्थवत्ता के एक सूत्र में गूँथता है। ऐसा आख्यान जिसके जरिए हम विराट ब्रह्माण्ड में अपने होने- सार्थक ढंग से होने के विस्मयबोध का तर्क खोज पाते हैं। ऐसा आख्यान जो हमें ऐतिहासिक स्मृतियों का 'अर्थ' समझाता है। जो हमारे सामाजिक सम्बन्धों की व्याख्या करता है। इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह कि हमारे नितान्त निविड़ एकान्त को, हमारी गहनतम संवेदनओं और भावनाओं को भी धर्म हमारे लिए बोधगम्य और व्याख्या के योग्य बनाता है। हम केवल एक जैविक संयोग का परिणाम नहीं हमारे जीवन का कुछ विशिष्ट अर्थ है। हमारे 'इस' जीवन का अर्थ 'यहीं' तक सीमित नहीं है; इस अर्थ का विस्तार परलोक या जन्मान्तर या किसी अन्य रूप में यहाँ से और अभी से आगे तक जाता है। जीवन से परे भी जीवन है, और जीवन न भी हो तो एक तर्केतर कालातीत पंहचान है, जो हमें हमारा धर्म देता है। दूसरे शब्दों में धर्म मनुष्य को उसकी अपनी सार्थकता का आश्वासन देता है।

मनुष्य की अस्तित्वगत विडम्बना हैं कि उसे रहना है एक ऐसी प्राकृतिक अवस्था के बीच, जिसका पूरा का पूरा तर्क मनुष्य की समझ के बाहर है। या वह तर्क से परे ऐसी चीज है जिसके बारे में कोई पूरी तरह से विश्वसनीय भविष्य कथन सम्भव नहीं है।

धर्म का समग्र आख्यान मनुष्य को इसी तर्क का, प्रकृति के पीछे ईश्वरीय इच्छा या किसी न किसी प्रकार की सार्थकता का विश्वास दिलाता है। धर्म की यह मूलभूत भूमिका ऐतिहासिक भी है, मनोवैज्ञानिक भी। मनुष्य के जीवन में धर्म की बहुत गहरी भूमिका है।

धर्म-भावना प्राकृतिक परिघटना में किसी अन्तर्निहित व्यवस्था की कल्पना के जरिये मनुष्य को सुरक्षा और निश्चिन्तता का बोध देती है, तो धर्म-सत्ता खुद अपनी तथा अपने द्वारा स्वीकृत लौकिक-सामाजिक सत्ता की पवित्रता का बोध कराती है। पवित्रता की खोज मनुष्य की बुनियादी खोज है। धर्म-सत्ता लौकिक और अलौकिक सभी धरातलों पर इस खोज की तृप्ति का दावा करती है। वह मनुष्य को प्राकृतिक व सामाजिक दोनों तरह की अवस्थाओं के सन्दर्भ में पवित्रता और निश्चिन्ता का आस्वासन देती है और बदले में चाहती है उतना ही पवित्र अतार्किक समर्पण। किसी भी धर्म में चार चीजे साफ दिखती है। मनुष्य की आध्यात्मिक पिपासा को तृप्त करने का दावा, सामाजिक अनुशासन और नैतिकता के नियम, आस्थातन्त्र (डॉग्मा) और विधर्मियों, अन्य धर्मावलम्बियों से अलग धार्मिकों की अपनी विशिष्ट सामाजिक पहचान।

सचमुच धर्मसत्ता दादू के समय मनुष्य की सहज कल्पना और आध्यात्मसत्ता के आत्मक्षय की परिणति हो चुकी थी। इसी आत्मक्षय के फलस्वरूप आध्यात्मिक पिपासा की तृप्ति का दावा करने वाला धर्म और अस्मिता का वाचक बन गया था।

दादू आदि निर्गुण सन्तों ने धर्मसत्ता से अध्यात्मसत्ता को पृथक करके देखने की दृष्टि दी और धर्म के विकृत रूप को आध्यात्मिक संस्कारों के द्वारा परिमार्जित कर एक प्रकार के सार्वभौम धर्म की साधना का विलक्षण प्रयत्न किया।

सन्त दादू की साधना किसी एकान्त गुफान्तरीय पर्वत प्रदेश की साधना नहीं है, अपितु वह समाज के भीतर रहते हुए उस सर्वव्यापी व सर्वभूतान्तरात्मा राम की ऐसी सर्वतोभद्र साधना है जो केवल अपना ही नहीं अपने पूरे सामाजिक समष्टि के मोक्ष का संकल्प धारण किए हुए है।

सन्तों की साधना केवल अपनी मुक्ति की साधना नहीं, लोक को भी अज्ञान और दुःख से मुक्त करने की साधना है, परन्तु लोक जिसे स्वार्थ और सुख कहता है, जिसके संग्रह के प्रयत्न में इतनी विषमता, इतना पाखण्ड और बैर फैलता है, उसे वे लोक का अज्ञान मानते हैं। इसलिए दादू ने सुख के लौकिक साधनों के संग्रह का उपाय न बताकर आचरण और भाव की शुद्धता, पवित्र विचार और निश्छल व्यवहार तथा बाह्य आडम्बरों को छोड़कर एक परमात्मा की आंतरिक भक्ति करने का उपदेश दिया। व्यक्तिगत साधना के द्वारा जब सब जीवों में एक ही परमात्मा की सत्ता की अनुभूति होने लगे तब अपने-पराये का भेद भूलकर मनुष्य सबसे प्रेम और समता का व्यवहार कर सकता है। अतः दादू के धार्मिक सुधार का दृष्टिकोण एक संत का ही दृष्टिकोण और उसका उपाय हमें, उनके द्वारा किसी सामूहिक संघर्ष अथवा सामाजिक या आर्थिक योजना के रूप में न मिलकर, संत की पवित्र रहनी और उपदेश के रूप में ही मिलता है।

परब्रह्म परमेश्वर को पाने का साधन केवल धर्म ही है। धर्म की तुलना किसी अन्य वस्तु से नहीं की जा सकती। इस साधन के द्वारा जो सर्वश्रेष्ठ परमतत्त्व है वह भी धर्म के अधिकार में आ जाता है।

सन्त साधकों ने ज्ञानमार्ग का खंडन तो नहीं किया, परन्तु जहाँ भी धर्म की चर्चा का अवसर आया वहीं पर धर्म को अवश्य प्रथम स्थान दिया गया है। संत दादू ने तो धर्महीन जीवन को जीवन ही नहीं माना। संत दादू वाणी, कर्म और मन तीनों साधनों द्वारा प्रभु के गुणों के कीर्तन और राम नाम के स्मरण को ही जीवन का पवित्र लक्ष्य मानते हैं। भक्ति के रत्न को पाने के लिए समय की प्रतिक्षा करना उन्हें पसंद नहीं है। उनका कहना है कि जीव की शोभा इसी में है कि वह प्रतिक्षण और प्रति-श्वास प्रभु के नाम का सिमरन करे तथा उसी में लीन रहे। प्रिय की स्मृति यदि पलभर के लिए भी विस्मृत हो जाए तो उनके विचार में वह भक्ति नहीं कहलाती। दादू दयाल के अनुसार भाव-भक्ति में सबसे महत्त्वपूर्ण क्रिया अपने आप को समर्पित कर देने की है।

दादू दयाल का कथन है कि प्रियतम का प्रेमी अपने सिर को उतारकर उसके सन्मुख रख दे और प्यार के लिए अहं भाव को आग में जला दे अपने शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके प्रिय के आगे समर्पित कर दे, फिर भी यह मधुर प्रियतम कटु प्रतीत न हो तभी तुझे उसका साथ मिल सकता है -

"दादू आसिक रब्ब दा, सिर भी डेबै लाहि

अल्लाह कारण आप कौ, साडै अन्दरि माहि

मोरे मोरे तन करै, बड़े करि कुरपाण

मीण कीड़ा ना लगे, दादू तौहू साण

जब लगि सीस न सौन्दर्य, तब लागे इसक न होई

आसिक मरणे ना डरै पिया पियाला सोई

हरि मारम मस्तक दीजिए, तब निकटि परम पद लीजिए

इस मारग यह मरणा, तिल पीछे पाव न धरणा ।।

दादू के अनुसार भगवान का सच्चा कैंकर्य अपनाने के लिए 'अहं भाव' को सर्वात्मभाव से त्याग देना ही उचित है। उनका यह विश्वास है कि मामूली सा आलस्य भी दास को अपने स्वामी की भक्ति से विमुख बना देता है। उनके अनुसार भक्ति के मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति पहले से ही मृत्यु के लिए प्रतिक्षण तैयार रहता है। वह जीवन की सम्पूर्ण आशाओं और इच्छाओं का परित्याग कर अपने आप को प्रेमी के चरणों की धूलि समझता है। दादू ने सहज भाषा में कहा है कि अहं का त्याग कर व्यक्ति को श्वास- श्वास में हरि जाप करना चाहिए। सभी जीवों से मैत्री भाव रखो यही सार तत्व है।

समस्या कथन:-

''संत दादू दयाल के धार्मिक विचारों की वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिकता''

अध्ययन के उद्देश्य:-

1. वर्तमान जीवन में संत दादू दयाल के धार्मिक विचारों का अध्ययन करना।

परिसीमन:-

प्रस्तुत अध्ययन में केवल समस्या से सम्बन्धित विचारों एवं सम्प्रत्ययों को दादू दयाल के काव्यग्रन्थों से संकलित किया जायेगा। इस अध्ययन में किसी भी प्रकार की सांख्यिकीय गणना विधि का प्रयोग नहीं किया जायेगा।

शोध विधि:-

प्रस्तुत शोध में तथ्यों के संग्रह हेतु विवरणात्मक विधि का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन में विशय-वस्तु से संबंधित तथ्यों एवं सूचनाओं का चयन दादू दयाल से सम्बन्धित संदर्भ पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, संस्मरणों आदि में लिखित विवरणों का विश्लेषण करने के पश्चात किया गया है। शोध प्रक्रिया की दृश्टि से दार्शनिक, विवरणात्मक एवं विवेचनात्मक विशयों पर किये जाने वाले अध्ययन में यह विधि सर्वथा उपयुक्त, तर्कसंगत एवं उत्तम मानी जाती है।

निष्कर्ष -

दादू के अनुसार धार्मिक विचारों से तात्पर्य ईश्वर में आस्था रखना, स्वर्ग-नर्क में विश्वास, नैतिक आचार-विचार, धर्म के प्रति श्रद्धा रखना, ईश्वर की पूजा करना, सत्य बोलना, अपने

जीवन को सादगी एवं आचरण की पवित्रता से परिपूर्ण करना आदि धार्मिक भावनाओं से है।

दादू का मानना है कि यदि व्यक्ति के जीवन में धर्म नही है तो वह जीवित होते हुए भी निष्प्राण माना जाता है। धर्म से सम्बन्धित विभिन्न विचारों को ही धार्मिक विचार माना जाता है।

दादू कहते हैं कि धर्म शब्द मानव के व्यक्तिगत एवं सामाजिक कत्र्तव्यों का बोधक है। धर्म किसी सम्प्रदाय विशेष का नाम नहीं है। यह समझ लेना आवश्यक है कि धर्म का मतलब हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख आदि से नहीं है अपितु इसका सम्बन्ध मानवोचित कत्र्तव्यों और आचारों के प्रति गहन आस्था से है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आधुनिक समय में धर्म किसी धार्मिक नेता के मस्तिष्क की उपज नहीं है, वरन् समाज के सांस्कृतिक विकास क्रम में विकसित महान् जीवन मूल्यों की सुदृढ़ भित्ति पर टिका शाश्वत या सनातन धर्म है। अतः दादू के धार्मिक विचारों के अनुसार वर्तमान में विद्यार्थियों को धार्मिक सद्भाव की शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए ताकि धार्मिक भेदभाव से बचा जा सके।

REFERENCES

1. उत्तर भारत की सन्त परम्परा: संपा. पं. परशुराम चतुर्वेदी, भारतीय भण्डार लीडर प्रेस प्रयाग, सं. 2008।

2. दादू (बग्ला): क्षितिमोहन सेन, विश्वभारती ग्रन्थालय नं. 210, कार्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता, 1342, बंग्ला।

3. श्री स्वामी दादू दयाल की वाणी: संपा. पं. चन्द्रिका प्रसाद त्रिपाठी, वैदिक यन्त्रालय अजमेर, सं. 1964।

4. दादू दयाल: राम बक्ष, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, 2009 ई.।

5. श्री दादू चरित्र चित्रावलि: संपा. स्वामी कनीराम दादू पंथी, प्रकाशन - श्रीरामसिंह श्रीचन्द दौलतराम गोयल श्री दादू नगरी भिवानी (हरियाणा) 1988 ई.।

6. दादू दयाल का सबद: संपा. पं. सुधाकर द्विवेदी, ना.प्र. सभा, वाराणसी, 1907 ई.।